राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक के प्रारूप में बच्चों की अनदेखी

हालांकि सरकार लगातार यह बात कहती रहती है कि कुपोषण एक बड़ी समस्या है, लेकिन इस बारे में बीते कुछ वर्षों में सरकार की कथनी किसी भी तरह से करनी में तब्दील नहीं हो पाई है। बजट में बच्चों के लिए कुल हिस्सेदारी (बच्चे कुल आबादी का 44 फीसदी हैं) कुल व्यय का महज 4 फीसदी ही है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार बच्चों की खाद्य सुरक्षा को विशेष मसला नहीं मानती या फिर बच्चों के बीच व्यापक पैमाने पर फैले कुपोषण को वह ज्यादा तरजीह नहीं देती।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक बच्चों के लिए एक हद तक खाद्य सुरक्षा की न्यूनतम गारंटी देकर इस मसले पर अहम भूमिका निभा सकता था। अफसोस, ऐसा नहीं हुआ। हालांकि इस विधेयक के प्रारूप में शुरुआत में काफी जोरदार ढंग से कहा गया है कि, 'मानव जीवन के संपूर्ण चक्र को ध्यान में रखते हुए भोजन व पोषण सुरक्षा मुहैया कराना...', निश्चित तौर पर बच्चों को इसमें शामिल न कर यह अपनी परिभाषा व प्रावधानों में पूर्ण तौर पर असफल साबित हुआ है। जीवन चक्र की शुरुआत जन्म से होती है और छह माह की उम्र तक नवजात शिशु के लिए एकमात्र निर्धारित आहार है मां का दूध। यह विधेयक कैसे सुनिश्चित करेगा कि इस उम्र में वह बच्चों की मदद करेगा, जो किसी भी बच्चे की संपूर्ण जिंदगी के शारीरिक, संज्ञानात्मक तथा सामाजिक विकास की नींव है, साथ ही यही वह दौर है जो कुपोषण के लिए भी बेहद अहम है। केंद्र सरकार के तहत काम कर रही महिलाओं को 6 माह का मातृत्व अवकाश पूर्ण वेतन के साथ मिलता है साथ ही मातृत्व अधिकार व स्तनपान संबंधी तमाम सामाजिक सुविधाएं भी उन्हें मुहैया होती हैं। मातृत्व अधिकार को अहम मानते हुए राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने अपने प्रारूप में देश की उन 15 करोड़ महिलाओं तथा नवजात शिशुओं की खाद्य सुरक्षा को इसके तहत लाने का प्रस्ताव रखा था जो असंगठित क्षेत्र में काम करती हैं। लेकिन मंत्रालय ने यह प्रारूप सिरे से ही नकार दिया।

इसी तरह वर्तमान आंगनवाड़ी जाने वाले बच्चों को दी जाने वाली 'पके हुए भोजन' की कानूनी गारंटी भी 'खाने के लिए तैयार भोजन' के नए प्रावधान से लचर कर दी गई है। इससे साफ होता है कि यह विधेयक बाजार बनाने और कारपोरेट हितों का ध्यान रखने के लिए बच्चों के हितों की बलि चढ़ा रहा है। घर ले जाने वाले राशन में यह अनिवार्यता होनी चाहिए कि, 'उसमें निर्धारित आहार का 50 फीसदी सूक्ष्म पोषक तत्व हो' तथा 'भोजन निर्धारित खाद्य कानूनों के तहत ही तैयार किया जाना चाहिए'(अनुसूची 2), इससे भोजन बनाने व वितरण का केंद्रीकरण होता है जो सुप्रीम कोर्ट के निर्देश का उल्लंघन है, जिसमें साफ तौर पर निजी ठेकेदारों पर प्रतिबंध लगाने तथा विकेंद्रित तरीके से स्वयं सहायता समूहों, महिला समूहों, पंचायतों आदि के जरिए भोजन पकाने व बांटने का काम करवाने की बात कही गई है।

इसके साथ ही गंभीर कुपोषण के प्रबंधन, पोषण परामर्श के लिए अधिकार तथा इससे संबंधित मुद्दों को जिन्हें कानूनी गारंटी की जरूरत थी, बिल्कुल ही छोड़ दिया गया है। इसकी जगह महज नाम के लिए कुछ कमजोर अधिकार दिए गए हैं जिनसे अतिरिक्त भोजन मुहैया हो सके।

हमारी मांग है कि कोई भी खाद्य विधेयक सभी बच्चों की भोजन व पोषण सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए ही बनाना चाहिए। खास तौर पर विधेयक में निम्न बातें तो होनी ही चाहिएं :

- एकीकृत बाल विकास परियोजना की सभी सेवाओं का सभी बच्चों, गर्भवती व स्तनपान कराने वाली महिलाओं तथा किशोरियों के लिए सार्वभौमिकरण। यह सुनिश्चित किया जाए कि हर दलित व आदिवासी बसाहट में आंगनवाड़ी केंद्र हो।
- एकीकृत बाल विकास परियोजना की सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार (बेहतर ढांचा, पूरक पोषाहार, प्रशिक्षण, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के लिए सहायक)
- बच्चों के स्वास्थ्य व पोषण के लिए चलाई जा रही सरकारी योजनाओं में 'निजी-सार्वजनिक भागीदारी', 'खाने को तैयार' या 'डिब्बाबंद' भोजन के नाम पर व्यावसायीकरण को बढ़ावा नहीं दिया जाना चाहिए।
- सभी तरह के कुपोषण के प्रबंधन का प्रावधान हो, इसमें अतिरिक्त पोषण पूरक, स्वास्थ्य देखभाल व उचित उपचार शामिल है।
- मातृत्व अधिकार सार्वभौमिक हों, जिसमें न्यूनतम वेतन के साथ कम से कम छह माह के अवकाश का प्रावधान हो।
- कामकाजी महिलाओं के लिए झूलाघर की सुविधाएं हों।